[2021] 3 उम. नि. प. 188

श्रीहरी हनुमानदास तोतला

बनाम

हेमंत विट्ठल कामत और अन्य

[2021 की सिविल अपील सं. 4665]

9 अगस्त, 2021

न्यायमूर्ति (डा.) धनंजय वाई. चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति एम. आर. शाह

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 7 नियम 11(घ) और धारा 11 – वादपत्र का नामंजूर किया जाना जहां वादपत्र में के कथन से यह प्रतीत होता है कि वाद किसी विधि द्वारा वर्जित है – सिविल न्यायालय द्वारा पूर्ववर्ती वाद में डिक्री पारित किए जाने से पूर्व वाद संपत्ति की नीलामी को चुनौती देते हुए पश्चात्वर्ती वाद फाइल किया जाना – पूर्ववर्ती वाद और पश्चात्वर्ती वाद में प्रत्यक्षत: और सारत: एक समान विवाद्यक होने के आधार पर पूर्ववर्ती वाद में के वादपत्र को नामंजूर करने के लिए आवेदन फाइल किया जाना – पूर्व-न्याय के सिद्धांत की प्रयोज्यता – जहां प्रतिवादी द्वारा आदेश 7 नियम 11 के अधीन आवदेन फाइल करके ऐसे पूर्ववर्ती वाद में के वादपत्र को पूर्व-न्याय के सिद्धांत के आधार पर नामंजूर करने की ईप्सा की गई हो जिसका अभी न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से न्यायनिर्णयन न किया गया हो, वहां ऐसे आवेदन को मंजूर नहीं किया जा सकता है चूंकि इस प्रश्न का अवधारण वादपत्र के नामंजूर करने के प्रक्रम पर नहीं अपितु केवल वाद का विचारण होने के उपरांत किया जा सकता है क्योंकि इस प्रक्रम पर केवल वादपत्र में किए गए प्रकथनों पर ही विचार किया जा सकता है ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि सुश्री लीला विट्ठल कामत वाद संपत्ति की हक धारक थी । तारीख 16 मई, 1996 को उसकी मृत्यु हो जाने पर संपत्ति उसके विधिक वारिसों – प्रथम प्रत्यर्थी और उसके भाई के नाम में नामांतरित की गई थी । प्रथम प्रत्यर्थी और उसके भाई ने कर्नाटक राज्य वित्त निगम से एक उधार लिया था और उधार के

प्रतिसंदाय के लिए प्रतिभूति के रूप में वाद संपत्ति को बंधक रखा गया था । चूंकि ऋण का प्रतिसंदाय नहीं किया गया था, इसलिए कर्नाटक राज्य वित्त निगम ने उस संपत्ति को नीलामी कर दिया । तृतीय प्रत्यर्थी, जो अपीलार्थी का हित-पूर्वाधिकारी है, ने 15,00,000/- रुपए की सबसे उच्च बोली लगाई थी । तृतीय प्रत्यर्थी के पक्ष में तारीख 8 अगस्त, 2006 को वाद संपत्ति का एक विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था । विक्रय विलेख के निष्पादन के बावजूद प्रथम प्रत्यर्थी और उसका भाई वाद संपत्ति का कब्जा सौंपने में असफल रहे और परिणामस्वरूप तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा तारीख 13 मार्च, 2007 को कब्जे के लिए एक वाद फाइल किया गया । प्रथम प्रत्यर्थी ने, जिसे वाद में द्वितीय प्रतिवादी के रूप में अभियोजित किया गया था, तारीख 20 दिसम्बर, 2007 को, अन्य बातों के साथ-साथ, यह प्रतिरक्षा लेते हुए अपना लिखित कथन फाइल किया कि कर्नाटक राज्य वित्त निगम को वाद संपत्ति का विक्रय करने का कोई प्राधिकार नहीं था; द्वितीय प्रतिवादी (इस अपील में प्रथम प्रत्यर्थी) ने कर्नाटक राज्य वित्त निगम से कोई उधार नहीं लिया था और न ही उसके साथ कोई संव्यवहार किया था । उसने वाद संपत्ति की प्रतिभूति के रूप में प्रस्थापना करते हुए कोई दस्तावेज निष्पादित नहीं किया था और द्वितीय प्रतिवादी का उधार लेने वाले से कोई सरोकार नहीं था । प्रथम प्रत्यर्थी ने तारीख 12 नवम्बर, 2008 को कर्नाटक राज्य वित्त निगम द्वारा तृतीय प्रत्यर्थी के पक्ष में निष्पादित तारीख 8 अगस्त, 2006 के विक्रय विलेख को मुख्य रूप से इस आधार पर चुनौती देते हुए एक वाद (2008 का मूल वाद सं. 138) फाइल किया कि कर्नाटक राज्य वित्त निगम को वाद संपत्ति का विक्रय करने का कोई प्राधिकार नहीं था । उसने वाद संपत्ति के विभाजन और अपने हिस्से के कब्जे की ईप्सा की । विचारण न्यायालय ने तारीख 26 फरवरी, 2009 के निर्णय द्वारा प्रथम वाद (2007 का मूल वाद सं. 103), जो तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा संस्थित किया गया था, को डिक्री किया और वाद में प्रतिवादियों (प्रथम प्रत्यर्थी और उसके भाई) को वाद संपत्ति का खाली और शांतिपूर्ण कब्जा तृतीय प्रत्यर्थी-वादी को सौंपने का निदेश दिया । प्रथम प्रत्यर्थी ने विचारण न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष एक अपील फाइल की । इस अपील के लंबित रहने के दौरान तृतीय प्रत्यर्थी ने 2008 के मूल वाद सं. 138

में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 10 के अधीन एक आवेदन 2007 के मूल वाद सं. 103 में के निर्णय से प्रथम अपील का निपटारा होने तक वाद की कार्यवाहियों को इस आधार पर रोकने के लिए फाइल किया कि द्वितीय वाद में अंतवर्लित विवाद्यक प्रत्यक्षत: और सारत: वही हैं जो पूर्ववर्ती वाद में थे । विचारण न्यायाधीश ने तारीख 3 नवम्बर, 2012 के आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि कब्जे के लिए पूर्ववर्ती वाद में और प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा घोषणा के लिए फाइल किए गए पश्चात्वर्ती वाद में अंतर्वलित विवाद्यक प्रत्यक्षत: और सारत: एक जैसे हैं । इसलिए आवेदन को मंजूर किया गया और प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा संस्थित पश्चात्वर्ती वाद में की कार्यवाहियों को रोक दिया गया । उच्च न्यायालय द्वारा पूर्ववर्ती वाद (2007 के मूल वाद सं. 103) में डिक्री को तारीख 11 अगस्त, 2017 के निर्णय द्वारा कायम रखा गया । उच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसरण में अपीलार्थी, जिसने तृतीय प्रत्यर्थी से वाद संपत्ति का क्रय किया था, ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन अन्य बातों के साथ-साथ वाद पूर्व-न्याय द्वारा वर्जित होने के आधार पर नामंजूर करने के लिए एक आवेदन फाइल किया । यह अभिवाक् किया गया कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा संस्थित वाद पूर्व-न्याय द्वारा वर्जित है क्योंकि विक्रय विलेख की विधिमान्यता से संबंधित आधार और हक के विवाद्यक को पूर्ववर्ती वाद, 2007 के मूल वाद सं. 103, में उठाया गया था । अपीलार्थी ने यह आग्रह किया कि विचारण न्यायालय के निर्णय के पश्चात्, जिसकी अभिपुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई थी, पक्षकारों के अधिकारों का और आगे न्यायनिर्णयन नहीं किया जा सकता है और उन पर पुन: मुकदमेबाजी नहीं की जा सकती है । विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 1 जुलाई, 2019 को आदेश 7 नियम 11 के अधीन आवेदन को खारिज कर दिया गया । अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के तारीख 1 जुलाई, 2019 के आदेश को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय ने आदेश 7 नियम 11 के अधीन आवेदन में उठाए गए सभी तीनों आधारों पर विचारण न्यायालय के तर्काधार को कायम रखते हुए अपील खारिज कर दी । पूर्व-न्याय के आधार के लिए, उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने ठीक ही यह निष्कर्ष निकाला था कि पूर्व-न्याय के आधार पर आदेश 7

नियम 11(घ) के अधीन फाइल किए गए आवेदन का विनिश्चय केवल वादपत्र में किए गए प्रकथनों पर विचार करके नहीं किया जा सकता है । अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7 नियम 11(घ) में यह उपबंधित है कि वहां वादपत्र नामंजूर कर दिया जाएगा "जहां वादपत्र में के कथन से यह प्रतीत होता है कि वाद किसी विधि द्वारा वर्जित है" । अत: यह विनिश्चय करने के लिए कि क्या वाद किसी विधि द्वारा वर्जित है या नहीं, वह वादपत्र में का कथन है जिसका अर्थान्वयन किया जाना होगा । न्यायालय को ऐसे आवेदन का विनिश्चय करते समय अवश्य केवल वादपत्र में के कथनों पर विचार करना चाहिए । क्या वाद किसी विधि द्वारा वर्जित है या नहीं, इसका अवधारण अवश्य वादपत्र में के कथनों से किया जाना चाहिए और मामले में लिखित कथन सहित किसी अन्य सामग्री के आधार पर इस विवाद्यक का विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र नहीं है । इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित पूर्ववर्ती मामलों में की नज़ीरों को दृष्टिगत करते हुए आदेश 7 नियम 11(घ) के अधीन आवेदन का विनिश्चय करने के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों का सारांश निम्नलिखित रूप में दिया जा सकता है :– (i) किसी वादपत्र को इस आधार पर नामंजूर करने के लिए कि वाद किसी विधि द्वारा वर्जित है, केवल वादपत्र में किए गए प्रकथनों के प्रति निर्देश करना होगा ; (ii) आवेदन के गुणागुण का विनिश्चय करते हुए, प्रतिवादी द्वारा वादपत्र में ली गई प्रतिरक्षा पर कतई विचार नहीं किया जाना चाहिए ; (iii) यह अवधारण करने के लिए कि क्या कोई वाद पूर्व-न्याय द्वारा वर्जित है या नहीं, यह आवश्यक है कि (i) 'पूर्ववर्ती वाद' का विनिश्चय किया गया है ; (ii) पश्चात्वर्ती वाद में के विवाद्यक प्रत्यक्षत: और सारत: पूर्ववर्ती वाद में भी विवाद्य थे ; (iii) पूर्ववर्ती वाद उन्हीं पक्षकारों या उन पक्षकारों के बीच था जिनके माध्यम से वे उसी हक के अधीन दावा, मुकदमेबाजी कर रहे हैं ; और (iv) इन विवाद्यकों का पश्चात्वर्ती वाद का विचारण करने के लिए सक्षम न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णयन और अंतिम रूप से विनिश्चय किया गया था ; और (vi)

चूंकि पूर्व-न्याय के अभिवाक् का न्यायनिर्णयन करने के लिए 'पूर्ववर्ती वाद' में के अभिवचनों, विवाद्यकों और विनिश्चय पर विचार करना अपेक्षित है, इसलिए ऐसा कोई अभिवाक् आदेश 7 नियम 11(घ) की परिधि से परे होगा और वहां केवल वादपत्र में के कथनों का परिशीलन करना होगा । प्रस्तुत मामले में, वादपत्र का अर्थपूर्ण अनुशीलन करने पर पूरी तरह से यह स्पष्ट होता है कि जब प्रथम प्रत्यर्थी ने पश्चात्वर्ती वाद संस्थित किया था, तब उसे पूर्ववर्ती वाद (2007 का मूल वाद सं. 103) जो कि तारीख 13 मार्च, 2007 को संस्थित किया गया था, में द्वितीय प्रतिवादी के रूप में अभियोजित किया गया था । प्रथम प्रत्यर्थी ने पश्चात्वर्ती वाद (2008 का मूल वाद सं. 138) संस्थित किया था, यद्यपि उसे पूर्ववर्ती वाद की जानकारी थी । पश्चात्वर्ती वाद, जो प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा संस्थित किया गया था, में के वादपत्र से यह उपदर्शित होता है कि उसे कर्नाटक राज्य वित्त निगम के पक्ष में निष्पादित बंधक की जानकारी थी और यह कि कर्नाटक राज्य वित्त निगम ने अपने बकाया की वसूली के लिए संपत्ति का विक्रय करके अपने भार का निष्पादन किया था तथा संपत्ति तारीख 8 अगस्त, 2006 को अपीलार्थी के पूर्वाधिकारी के पक्ष में विक्रय की गई थी । वस्तुतः, वादपत्र में यह अभिकथन अंतर्विष्ट है कि इस बात की पूरी संभाव्यता है कि प्रथम प्रत्यर्थी को 2007 के मूल वाद सं. 103 में कब्जे के लिए डिक्री सहन करनी पड़ सकती है और इस बात ने प्रथम प्रत्यर्थी को विक्रय विलेख की वैधता को चुनौती देने के लिए वाद संस्थित करने हेतु "बाध्य किया है" । इस तथ्य को देखते हुए कि पूर्ववर्ती वाद में नीलामी को चुनौती नहीं दिए जाने और कर्नाटक राज्य वित्त निगम द्वारा बाद में निष्पादित विक्रय विलेख के संबंध में एक तर्क दिया गया था, इसलिए यह संभाव्य है कि प्रथम प्रत्यर्थी ने इसके पश्चात् अपने अधिकारों का प्रयोग करने का विनिश्चय किया और पश्चात्वर्ती वाद फाइल किया । जो भी स्थिति हो, वादपत्र के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि प्रथम प्रत्यर्थी ने इस तथ्य को छिपाने का प्रयत्न नहीं किया था कि उस समय पर संपत्ति से संबंधित एक वाद सिविल न्यायालय के समक्ष लंबित था । यह भी उल्लेख करना सुसंगत है कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा वाद (2008 का मूल वाद सं. 138) संस्थित करने के समय पर सिविल न्यायालय द्वारा 2007 के मूल वाद सं. 103 में कोई डिक्री पारित नहीं की गई थी ।

इस प्रकार, उस समय पर 2007 के मूल वाद सं. 103 में उठाए गए विवाद्यकों का न्यायनिर्णयन नहीं किया गया था । इसलिए वादपत्र से, प्रत्यक्षतः, ऐसा कोई तथ्य प्रकट नहीं होता है जिसके आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकें कि वादपत्र इस आधार पर नामंजूर किए जाने योग्य है कि यह पूर्व-न्याय के सिद्धांतों द्वारा वर्जित है । उच्च न्यायालय और विचारण न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करते हुए सही दृष्टिकोण था कि अपीलार्थी द्वारा दिए गए तर्कों के आधार पर विनिश्चय करने के लिए न्यायालय को वादपत्र में किए गए प्रकथनों से परे जाना होगा और 2007 के मूल वाद सं. 103 में के अभिवचनों, निर्णय और डिक्री का परिशीलन करना होगा । आदेश 7 नियम 11 के अधीन आवेदन का विनिश्चय अवश्य वादपत्र के दायरे में रहकर किया जाना चाहिए । विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने आदेश 7 नियम 11(घ) के अधीन आवेदन को नामंजूर करके ठीक किया था । (पैरा 16, 20 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2020]	(2020) एस. सी. सी. ऑन लाइन एस. सी. 482 : **शक्ति भोग फूड इंडस्ट्रीज लि.** बनाम **सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया और एक अन्य** ;	19
[2018]	(2018) 5 एस. सी. सी. 644 : **सौमित्र कुमार सेन** बनाम **श्यामल कुमार सेन** ;	11
[2012]	(2012) 8 एस. सी. सी. 706 : **चर्च ऑफ क्राइस्ट चेरिटेबल ट्रस्ट एंड ऐजुकेशनल चेरिटेबल सोसाइटी** बनाम **पोन्नियाम्मन ऐजुकेशनल ट्रस्ट** ;	18
[2008]	(2008) 12 एस. सी. सी. 661 : **कमला और अन्य** बनाम **केटी ईश्वरा सा** ;	18
[2004]	(2004) 1 एस. सी. सी. 551 : **वी. राजेश्वरी** बनाम **टी. सी. स्वर्णबावा** ;	17
[2003]	(2003) 1 एस. सी. सी. 557 : **सलीमभाई** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ।	19

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2021 की सिविल अपील सं. 4665.

2019 की सिविल पुनरीक्षण याचिका सं. 100089 में कर्नाटक उच्च न्यायालय के तारीख 18 जनवरी, 2021 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री तरुण गुप्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से सुश्री किरन सूरी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सर्वश्री एस. जे. अमित, कृष्ण कुमार और डा. (श्रीमती) विपिन गुप्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) धनंजय वाई. चंद्रचूड़ ने दिया ।

न्या. (डा.) चंद्रचूड़ – इजाजत दी गई ।

2. यह अपील कर्नाटक उच्च न्यायालय की धारवाड़ न्यायपीठ के एक एकल न्यायाधीश के तारीख 18 जनवरी, 2021 के निर्णय से उद्भूत हुई है । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन एक आवेदन (2008 के मूल वाद सं. 138 में अंतरिम आवेदन सं. 7) पर द्वितीय अपर ज्येष्ठ सिविल न्यायाधीश और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बेलगाम के तारीख 1 जुलाई, 2019 के आदेश को चुनौती देने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में सिविल प्रक्रिया संहिता) की धारा 115 के अधीन उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण अधिकारिता का अवलंब लिया गया था ।

3. सुश्री लीला विट्ठल कामत वाद संपत्ति की हक धारक थी । तारीख 16 मई, 1996 को उसकी मृत्यु हो जाने पर संपत्ति उसके विधिक वारिसों – प्रथम प्रत्यर्थी और उसके भाई के नाम में नामांतरित की गई थी । प्रथम प्रत्यर्थी और उसके भाई ने कर्नाटक राज्य वित्त निगम से एक उधार लिया था और उधार के प्रतिसंदाय के लिए प्रतिभूति के रूप में वाद संपत्ति को बंधक रखा गया था । चूंकि ऋण का प्रतिसंदाय नहीं किया गया था, इसलिए कर्नाटक राज्य वित्त निगम ने उस संपत्ति की निलामी कर दी । तृतीय प्रत्यर्थी, जो अपीलार्थी का हित-पूर्वाधिकारी है, ने 15,00,000/- रुपए की सबसे उच्च बोली लगाई थी । तृतीय प्रत्यर्थी के पक्ष में तारीख 8 अगस्त, 2006 को वाद संपत्ति का

एक विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था । विक्रय विलेख के निष्पादन के बावजूद प्रथम प्रत्यर्थी और उसका भाई वाद संपत्ति का कब्जा सौंपने में असफल रहे और परिणामस्वरूप तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा तारीख 13 मार्च, 2007 को कब्जे के लिए एक वाद फाइल किया गया । प्रथम प्रत्यर्थी ने, जिसे वाद में द्वितीय प्रतिवादी के रूप में अभियोजित किया गया था, तारीख 20 दिसम्बर, 2007 को अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित प्रतिरक्षाएं उठाते हुए अपना लिखित कथन फाइल किया :–

(i) कर्नाटक राज्य वित्त निगम को वाद संपत्ति का विक्रय करने का कोई प्राधिकार नहीं था ;

(ii) द्वितीय प्रतिवादी (इस अपील में प्रथम प्रत्यर्थी) ने कर्नाटक राज्य वित्त निगम से कोई उधार नहीं लिया था और न ही उसके साथ कोई संव्यवहार किया था । उसने वाद संपत्ति की प्रतिभूति के रूप में प्रस्थापना करते हुए कोई दस्तावेज निष्पादित नहीं किए थे ; और

(iii) द्वितीय प्रतिवादी का उधार लेने वाले से कोई सरोकार नहीं था ।

वाद में विवाद्यक विरचित किए गए, जिनमें से एक निम्नलिखित था :–

"क्या प्रतिवादी सं. 2-कर्नाटक राज्य वित्त निगम को वाद संपत्ति का विक्रय करने का कोई प्राधिकार नहीं था ?"

4. प्रथम प्रत्यर्थी ने तारीख 12 नवम्बर, 2008 को कर्नाटक राज्य वित्त निगम द्वारा तृतीय प्रत्यर्थी के पक्ष में तारीख 8 अगस्त, 2006 को निष्पादित विक्रय विलेख को मुख्य रूप से इस आधार पर चुनौती देते हुए एक वाद (2008 का मूल वाद सं. 138) फाइल किया कि कर्नाटक राज्य वित्त निगम को वाद संपत्ति का विक्रय करने का कोई प्राधिकार नहीं था । उसने वाद संपत्ति के विभाजन और अपने हिस्से के कब्जे की ईप्सा की । प्रथम प्रत्यर्थी ने वादपत्र में निम्नलिखित प्रकथन किए :–

(i) प्रथम प्रत्यर्थी की माता वाद संपत्ति की स्वामिनी थी । उसकी मृत्यु के पश्चात् वाद संपत्ति प्रथम प्रत्यर्थी और उसके भाई

को विरासत में प्राप्त हुई थी और प्रथम प्रत्यर्थी वर्ष 1998 से वाद फाइल करने की तारीख तक इस संपत्ति पर काबिज है ;

(ii) प्रथम प्रत्यर्थी के भाई ने वाद संपत्ति को उसकी सहमति के बिना कर्नाटक राज्य वित्त निगम के पास बंधक किया था और कर्नाटक राज्य वित्त निगम ने वाद संपत्ति के हक का अन्वेषण और अंतर्निहित दस्तावेजों का सत्यापन किए बिना वाद संपत्ति को प्रतिभूति के रूप में स्वीकार किया था ;

(iii) वर्ष 2004 में, प्रथम प्रत्यर्थी के भाई की पुत्रियों ने उक्त वाद संपत्ति के विभाजन और पृथक् कब्जे के लिए एक वाद फाइल किया था जिसमें प्रथम प्रत्यर्थी एक पक्षकार था । उसमें वाद संपत्ति के विरुद्ध कर्नाटक राज्य वित्त निगम द्वारा मंजूर किए गए उधार का कोई उल्लेख नहीं था ;

(iv) प्रथम प्रत्यर्थी ने कर्नाटक राज्य वित्त निगम को वाद संपत्ति को बंधक करने की सहमति नहीं दी थी और इस प्रयोजन के लिए कोई दस्तावेज निष्पादित नहीं किया था ; और

(v) प्रथम प्रत्यर्थी को कर्नाटक राज्य वित्त निगम द्वारा तृतीय प्रत्यर्थी के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख की जानकारी तब प्राप्त हुई थी जब वह तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए वाद अर्थात् 2007 के मूल वाद सं. 103 में उपसंजात हुआ था । इस बात की संभावना है कि प्रथम प्रत्यर्थी को 2007 के मूल वाद सं. 103 में कब्जे के लिए डिक्री को सहन करना पड़ सकता है । अत: प्रथम प्रत्यर्थी ने विक्रय विलेख की विधिमान्यता को चुनौती देते हुए विभाजन और कब्जे के लिए तथा वाद संपत्ति में अपने हिस्से का दावा करने के लिए यह वाद फाइल किया है ।

5. विचारण न्यायालय द्वारा निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए थे :–

"1. क्या वाद संपत्ति का वर्णन सही है ?

2. क्या वादी ने यह साबित किया है कि उसने वाद संपत्ति का क्रय किया था और उसने विधिमान्य हक अर्जित किया था,

जैसा कि अभिवाक् किया गया है ?

3. क्या वादी वाद संपत्ति के कब्जे का हकदार है ?

4. क्या प्रतिवादी सं. 2 ने यह साबित किया है कि कर्नाटक राज्य वित्त निगम को वाद संपत्ति का विक्रय करने का कोई प्राधिकार नहीं था ?

5. क्या प्रतिवादी सं. 2 ने यह साबित किया है कि वाद के लिए कोई वाद हेतुक नहीं है ?

6. क्या वादी डिक्री के लिए हकदार है ?

7. क्या डिक्री या आदेश किया जाए ?"

6. विचारण न्यायालय ने तारीख 26 फरवरी, 2009 के निर्णय द्वारा प्रथम वाद (2007 के मूल वाद सं. 103), जो तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा संस्थित किया गया था, को डिक्री किया और वाद में प्रतिवादियों (प्रथम प्रत्यर्थी और उसके भाई) को वाद संपत्ति का खाली और शांतिपूर्ण कब्जा तृतीय प्रत्यर्थी-वादी को सौंपने का निदेश दिया । विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि :–

(i) प्रथम प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की इस दलील का कि कर्नाटक राज्य वित्त निगम को वाद संपत्ति को नीलाम करने का प्राधिकार नहीं था, इस वाद में अवधारण नहीं किया जा सकता है और इसे स्वतंत्र रूप से चुनौती दी जानी चाहिए । प्रथम प्रत्यर्थी ने नीलामी या कर्नाटक राज्य वित्त निगम और वादी-तृतीय प्रत्यर्थी के बीच निष्पादित विक्रय विलेख को चुनौती देने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दलीलें सुने जाने तक कोई कार्रवाई नहीं की थी, यद्यपि साक्ष्य से यह सुझाव मिलता है कि उसे नीलामी की जानकारी थी । प्रथम प्रत्यर्थी ने कर्नाटक राज्य वित्त निगम के पत्र की प्राप्ति की अभिस्वीकृति की थी । इसके अतिरिक्त, कर्नाटक राज्य वित्त निगम को 2004 के मूल वाद सं. 369 में, वह वाद जो उसके भाई की पुत्रियों द्वारा फाइल किया गया था, चतुर्थ प्रतिवादी के रूप में अभियोजित किया गया था और वादपत्र में यह प्रकथन किया गया था कि कर्नाटक राज्य वित्त निगम द्वारा दी

गई नीलामी की सूचना अकृत और शून्य थी ;

(ii) प्रतिवादी-प्रथम प्रत्यर्थी ने विभाजन और पृथक् कब्जे के लिए 2008 का मूल वाद सं. 138 फाइल किया था जिसमें दावा किए गए अनुतोषों में से एक यह था कि वादी-तृतीय प्रत्यर्थी तथा कर्नाटक राज्य वित्त निगम के बीच निष्पादित विक्रय विलेख प्रथम प्रत्यर्थी पर आबद्धकर नहीं है । यद्यपि 2007 के मूल वाद सं. 103 और 2008 के मूल वाद सं. 138 को संयोजित करने के लिए एक आवेदन फाइल किया गया था, किंतु इसे मंजूर नहीं किया गया । इन परिस्थितियों में, प्रस्तुत वाद में विक्रय विलेख की विधिमान्यता का अवधारण नहीं किया जा सकता है, विशिष्ट रूप से जब कर्नाटक राज्य वित्त निगम को इस वाद में पक्षकार नहीं बनाया गया था । इस प्रकार, विक्रय विलेख और नीलामी की विधिमान्यता पर प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए अन्य वाद (2008 के मूल वाद सं. 138) में विचार करना होगा ; और

(iii) वादी-तृतीय प्रत्यर्थी तथा कर्नाटक राज्य वित्त निगम के बीच निष्पादित विक्रय विलेख को न्यायालय के निर्णय की तारीख पर अपास्त नहीं किया गया है । इस चुनौती के अतिरिक्त, प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा वादी-तृतीय प्रत्यर्थी के कब्जे के दावे को चुनौती देने के लिए उठाया गया कोई अन्य आधार नहीं है । इस आधार पर, विक्रय विलेख विधिमान्य है और कर्नाटक राज्य वित्त निगम द्वारा निष्पादित विक्रय विलेख के फलस्वरूप वाद संपत्ति का हक तृतीय प्रत्यर्थी-वादी को अंतरित किया जाता है । तृतीय प्रत्यर्थी को संपत्ति का कब्जा लेने का अधिकार है ।

7. प्रथम प्रत्यर्थी ने विचारण न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष अपील (आरएफए सं.3037/2008) फाइल की । इस अपील के लंबित रहने के दौरान तृतीय प्रत्यर्थी ने 2008 के मूल वाद सं. 138 में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 10 के अधीन एक आवेदन 2007 के मूल वाद सं. 103 में के निर्णय से प्रथम अपील का निपटारा होने तक वाद की कार्यवाहियों को इस आधार पर रोकने के लिए फाइल किया कि द्वितीय वाद में अंतर्वलित विवाद्यक प्रत्यक्ष रूप से और

सारभूत रूप से वही हैं जो पूर्ववर्ती वाद में थे । विचारण न्यायाधीश ने तारीख 3 नवम्बर, 2012 के आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि कब्जे के लिए पूर्ववर्ती वाद में और प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा घोषणा के लिए फाइल किए गए पश्चात्वर्ती वाद में अंतर्वलित विवाद्यक प्रत्यक्ष रूप से और सारभूत रूप से एक जैसे हैं । इसलिए आवेदन को मंजूर किया गया और प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा संस्थित पश्चात्वर्ती वाद में की कार्यवाहियों को रोक दिया गया ।

8. उच्च न्यायालय द्वारा पूर्ववर्ती वाद (2007 के मूल वाद सं. 103) में डिक्री को तारीख 11 अगस्त, 2017 के निर्णय द्वारा कायम रखा गया । उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों के साथ अपील को खारिज कर दिया :–

(i) वादी-तृतीय प्रत्यर्थी का यह कथन है कि दोनों प्रतिवादियों (अर्थात् प्रथम प्रत्यर्थी और उसके भाई) ने धन उधार लिया था । तथापि, कर्नाटक राज्य वित्त निगम ने 2003 की प्रकीर्ण याचिका सं. 114 में यह कथन करते हुए एक ज्ञापन फाइल किया था कि प्रथम प्रत्यर्थी (उसमें द्वितीय प्रतिवादी) प्रत्याभूति-दाता नहीं था ; और

(ii) 2008 के मूल वाद सं. 138 को 2007 के मूल वाद सं. 103 का संयोजन करने के लिए फाइल किए गए आवेदन को विचारण न्यायालय द्वारा मंजूर करना चाहिए था । चूंकि प्रथम प्रत्यर्थी के अधिकार पर 2007 के मूल वाद सं. 103 से उद्भूत वर्तमान कार्यवाहियों में विचार नहीं किया जा सकता है, इसलिए तृतीय प्रत्यर्थी वाद संपत्ति के कब्जे का हकदार है क्योंकि वह एक सद्भावी नीलाम क्रेता है ।

9. उच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसरण में अपीलार्थी, जिसने तृतीय प्रत्यर्थी से वाद संपत्ति का क्रय किया था, ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन (i) न्यायालय फीस का असंदाय ; (ii) वाद हेतुक का अप्रकटीकरण ; और (iii) वाद पूर्व-न्याय द्वारा वर्जित होने के आधारों पर नामंजूर करने के लिए एक आवेदन (2008 के मूल वाद सं. 138 में तारीख 25 मार्च, 2019 का अंतरिम

आवेदन सं. 8) फाइल किया । यह अभिवाक् किया गया कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा संस्थित वाद पूर्व-न्याय द्वारा वर्जित है क्योंकि विक्रय विलेख की विधिमान्यता से संबंधित आधार और हक के विवाद्यक को पूर्ववर्ती 2007 के मूल वाद सं. 103 में उठाए गए थे । अपीलार्थी ने यह आग्रह किया कि विचारण न्यायालय के निर्णय के पश्चात्, जिसकी अभिपुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई थी, पक्षकारों के अधिकारों का और आगे न्यायनिर्णयन नहीं किया जा सकता है और उन पर पुन: मुकदमेबाजी नहीं की जा सकती है ।

10. विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 1 जुलाई, 2019 को आदेश 7 नियम 11 के अधीन आवेदन को निम्नलिखित कारणों से खारिज कर दिया गया :–

(i) न्यायालय फीस के असंदाय की बाबत, आदेश 7 नियम 11 के अनुसार, वादपत्र केवल तब नामंजूर किया जाएगा यदि वादपत्र ऐसे पत्र पर लिखा गया है जो अपर्याप्त रूप से स्टांपित है और न्यायालय द्वारा वादी से एक नियत समय के भीतर अपेक्षित स्टांप पत्र देने की अपेक्षा की जाती है और ऐसे आदेश के बावजूद वादी ऐसा करने में असफल रहता है । इस मामले में, न्यायालय द्वारा ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया गया था ;

(ii) प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा वादपत्र के पैरा 5 में वाद हेतुक का विनिर्दिष्ट रूप से अभिवाक् किया गया है ; और

(iii) आदेश 7 नियम 11(घ) के अधीन वाद किसी विधि द्वारा वर्जित होने के कारण वादपत्र को नामंजूर करने के लिए न्यायालय को वादपत्र में किए गए प्रकथनों से मार्गदर्शित होने की आवश्यकता है न कि ली गई प्रतिरक्षा से । अपीलार्थी द्वारा लिए गए आधार – की उठाए गए विवाद्यकों का विनिश्चय 2007 के मूल वाद सं. 103 में विचारण न्यायालय की डिक्री द्वारा किया गया था और अपील में उच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्टि की गई थी – अपीलार्थी की प्रतिरक्षा हैं । इस प्रकार इन्हें सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन किसी वादपत्र को नामंजूर करते हुए विचार में नहीं लिया जा सकता है । इसके अतिरिक्त, इस बारे में

विवाद्यक की क्या वाद पूर्व-न्याय द्वारा वर्जित है या नहीं, इसका विनिश्चय आदेश 7 नियम 11 के अधीन आवेदन में नहीं किया जा सकता है अपितु इसका विनिश्चय वाद में किया जाना चाहिए ।

11. अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के तारीख 1 जुलाई, 2019 के आदेश को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय ने आदेश 7 नियम 11 के अधीन आवेदन में उठाए गए सभी तीनों आधारों पर विचारण न्यायालय के तर्काधार को कायम रखते हुए अपील खारिज कर दी । पूर्व-न्याय के आधार के लिए, उच्च न्यायालय ने **सौमित्र कुमार सेन** बनाम **श्यामल कुमार सेन**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया और यह मत व्यक्त किया कि विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने ठीक ही यह निष्कर्ष निकाला था कि पूर्व-न्याय के आधार पर आदेश 7 नियम 11(घ) के अधीन फाइल किए गए आवेदन का विनिश्चय केवल वादपत्र में किए गए प्रकथनों पर विचार करके नहीं किया जा सकता है । उच्च न्यायालय के मतानुसार, आदेश 7 नियम 11 के अधीन किसी वादपत्र को केवल तब नामंजूर किया जा सकता है यदि वह वादपत्र में अंतर्विष्ट प्रकथनों के आधार पर कायम रखने योग्य नहीं है । प्रस्तुत आवेदन में, ऐसे अवधारण के लिए इसकी तुलना प्रस्तुत वाद से करने के लिए अभिवचनों, विरचित विवाद्यकों और पूर्ववर्ती वाद में के निर्णय को प्रस्तुत करना अपेक्षित होगा । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह कवायद, जैसा कि **सौमित्र कुमार सेन** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, केवल वादपत्र में किए गए प्रकथनों पर विचार करके नहीं की जा सकती है । उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण याचिका की खारिजी के अनुसरण में अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के आदेश को चुनौती देते हुए इस न्यायालय में समावेदन किया है ।

12. इस अपील में झगड़े की जड़ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन आवेदन को नामंजूर किया जाना है । प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा संस्थित 2008 का मूल वाद सं. 138 घोषणा, विभाजन,

---

[1] (2018) 5 एस. सी. सी. 644.

कब्जे के लिए और व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष के लिए वाद है । प्रथम प्रत्यर्थी के अतिरिक्त, जो उक्त वाद में वादी है, कर्नाटक राज्य वित्त निगम (द्वितीय प्रत्यर्थी) प्रथम प्रतिवादी है । तृतीय प्रत्यर्थी द्वितीय प्रतिवादी है, अपीलार्थी चतुर्थ प्रतिवादी है । वाद में तृतीय प्रतिवादी प्रथम प्रत्यर्थी का भाई डाक्टर अरविन्द विट्ठल कामत है । वाद में निम्नलिखित अनुतोषों की ईप्सा की गई है :–

> "(क) यह घोषणा की जाए कि प्रतिवादी सं. 1 द्वारा वाद संपत्ति की बाबत प्रतिवादी सं. 2 के पक्ष में तारीख 8 अगस्त, 2006 को निष्पादित किया गया विक्रय विलेख वादी के आधे हिस्से की सीमा तक अकृत तथा शून्य है और वह वादी पर आबद्धकर नहीं है ।
>
> (ख) वादी को वाद संपत्ति में आधा हिस्सा दिया जाए और वाद संपत्ति में भौतिक विभाजन करके उसे उसके आधे हिस्से का वास्तविक कब्जा दिया जाए ।
>
> (ग) प्रतिवादियों को वाद संपत्ति में वादी के वास्तविक कब्जे में हस्तक्षेप करने से अवरुद्ध किया जाए जो उसे शाश्वत व्यादेश जारी करके दिया जाए ।
>
> (घ) वादी को वाद का संपूर्ण खर्चा अधिनिर्णीत किया जाए ।"

13. वादपत्र में आवश्यक प्रकथन यह हैं कि प्रश्नगत संपत्ति की स्वामिनी प्रथम प्रत्यर्थी-वादी और तृतीय प्रतिवादी की माता थी । यह प्रकथन किया गया है कि उनके पिता की उनकी माता से पहले मृत्यु हो गई थी और तारीख 26 मई, 1996 को उनकी माता की मृत्यु के पश्चात् प्रथम प्रत्यर्थी और उसके भाई को संपत्ति समान हिस्से में विरासत में मिली थी । तृतीय प्रतिवादी ने कथित रूप से एक सीटी स्केन सेंटर स्थापित करने के लिए कर्नाटक राज्य वित्त निगम से उधार लिया था और उस प्रयोजन के लिए वाद संपत्ति को प्रतिभूति के रूप में बंधक किया था । प्रथम प्रत्यर्थी के अनुसार, उसके भाई को वाद संपत्ति की बाबत बंधक सृजित करने का कोई अधिकार नहीं था जो कि प्रथम प्रत्यर्थी और उसके भाई दोनों के संयुक्त स्वामित्व में थी । यह अभिकथन किया गया है कि कर्नाटक राज्य वित्त निगम ने संपत्ति पर

अपने प्रभार के निष्पादन में संपत्ति का विक्रय कर दिया और तारीख 8 अगस्त, 2006 को द्वितीय प्रतिवादी (इस अपील में तृतीय प्रत्यर्थी) के पक्ष में एक विक्रय विलेख रजिस्ट्रीकृत कर दिया । प्रथम प्रत्यर्थी के अनुसार, उसने न तो बंधक के लिए सहमति दी थी और न ही किसी दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए थे । प्रथम प्रत्यर्थी ने यह अभिवाक् किया कि उसे नीलाम-क्रेता द्वारा संस्थित 2007 के मूल वाद सं. 103 में कब्जे के लिए डिक्री सहन करनी पड़ सकती है और तद्नुसार 2008 का मूल वाद सं. 138 फाइल करके वाद संपत्ति में आधे हिस्से की बाबत एक विधिपूर्ण स्वामी के रूप में अपने दावे और हित की ईप्सा करते हुए प्राख्यान किया ।

14. अपीलार्थी की ओर से दी गई दलील यह है कि वाद संपत्ति के हक से संबंधित विवाद्यक का न्यायनिर्णयन पूर्ववर्ती वाद में अपीलार्थी के हित-पूर्वाधिकारी के पक्ष में हो गया था और कब्जे के लिए डिक्री को उच्च न्यायालय द्वारा कायम रखा गया था । इसलिए उन्हीं विवाद्यकों को उठाते हुए और उसी विक्रय विलेख को चुनौती देते हुए फाइल किया गया एक अन्य वाद कायम रखने योग्य नहीं है और पूर्व-न्याय के सिद्धांतों द्वारा वर्जित है । इसके अतिरिक्त, यह दलील दी गई कि प्रथम प्रत्यर्थी को पूर्ववर्ती वाद में द्वितीय प्रतिवादी के रूप में सूचीबद्ध किया गया था और कर्नाटक राज्य वित्त निगम द्वारा तृतीय प्रत्यर्थी के पक्ष में किए गए विक्रय की विधिमान्यता के संबंध में एक विनिर्दिष्ट प्रतिरक्षा ली गई थी । दलील यह है कि कर्नाटक राज्य वित्त निगम द्वारा निष्पादित मूल विक्रय विलेख तारीख 8 अगस्त, 2006 का है । प्रथम वाद में डिक्री तारीख 26 फरवरी, 2009 को की गई थी और यद्यपि डिक्री की तारीख से बारह वर्ष व्यतीत हो गए हैं, तो भी अपीलार्थी को नीलाम-क्रेता के हित-पूर्वाधिकारी के रूप में वाद संपत्ति का उपभोग करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा रहा है ।

15. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 7 नियम 11 निम्नलिखित है :–

> "11. वादपत्र का नामंजूर किया जाना – वादपत्र निम्नलिखित दशाओं में नामंजूर कर दिया जाएगा –

(क) जहां वह वाद-हेतुक प्रकट नहीं करता है ;

(ख) जहां दावाकृत अनुतोष का मूल्यांकन कम किया गया है और वादी मूल्यांकन को ठीक करने के लिए न्यायालय द्वारा अपेक्षित किए जाने पर उस के भीतर जो न्यायालय ने नियत किया है, ऐसा करने में असफल रहता है ;

(ग) जहां दावाकृत अनुतोष का मूल्यांकन ठीक है किंतु वादपत्र अपर्याप्त स्टांप-पत्र पर लिखा गया है और वादी अपेक्षित स्टांप-पत्र के देने के लिए न्यायालय द्वारा अपेक्षित किए जाने पर उस समय के भीतर, जो न्यायालय ने नियत किया है, ऐसा करने में असफल रहता है ;

(घ) <u>जहां वादपत्र में के कथन से यह प्रतीत होता है कि वाद किसी विधि द्वारा वर्जित है :</u>

परंतु मूल्यांकन की शुद्धि के लिए या अपेक्षित स्टांप-पत्र के देने के लिए न्यायालय द्वारा नियत समय तब तक नहीं बढ़ाया जाएगा जब तक कि न्यायालय का अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से यह समाधान नहीं हो जाता है कि वादी किसी असाधारण कारण से, न्यायालय द्वारा नियत समय के भीतर, यथास्थिति, मूल्यांकन की शुद्धि करने या अपेक्षित स्टांप-पत्र के देने से रोक दिया गया था और ऐसे समय के बढ़ाने से इंकार किए जाने से वादी के प्रति गंभीर अन्याय होगा ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

16. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11(घ) में यह उपबंधित है कि वहां वादपत्र नामंजूर कर दिया जाएगा "जहां वादपत्र में के कथन से यह प्रतीत होता है कि वाद किसी विधि द्वारा वर्जित है" । अत: यह विनिश्चय करने के लिए कि क्या वाद किसी विधि द्वारा वर्जित है या नहीं, वह वादपत्र में का कथन है जिसका अर्थान्वयन किया जाना होगा । न्यायालय को ऐसे आवेदन का विनिश्चय करते समय अवश्य केवल वादपत्र में के कथनों पर विचार करना चाहिए । क्या वाद किसी विधि द्वारा वर्जित है या नहीं, इसका अवधारण अवश्य वादपत्र में के कथनों से किया जाना चाहिए और मामले में लिखित कथन सहित

किसी अन्य सामग्री के आधार पर इस विवाद्यक का विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र नहीं है । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11(घ) के निर्वचन पर पूर्ववर्ती निर्णयों को निर्दिष्ट करने के लिए अग्रसर होने से पूर्व हम सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 को निर्दिष्ट करना आवश्यक समझते हैं, जिसमें पूर्व-न्याय को परिभाषित किया गया है :–

> "11. **पूर्व-न्याय** – कोई भी न्यायालय किसी ऐसे वाद या विवाद्यक का विचारण नहीं करेगा जिसमें प्रत्यक्षत: और सारत: विवाद्य-विषय उसी हक के अधीन मुकदमा करने वाले उन्हीं पक्षकारों के बीच के या ऐसे पक्षकारों के बीच के, जिनसे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन वे या उनमें से कोई दावा करते हैं, किसी पूर्ववर्ती वाद में भी ऐसे न्यायालय में प्रत्यक्षत: और सारत: विवाद्य रहा है, जो ऐसे पश्चात्वर्ती वाद का या उस वाद का, जिसमें ऐसा विवाद्यक वाद में उठाया गया है, विचारण करने के लिए सक्षम था और ऐसे न्यायालय द्वारा सुना जा चुका है और अंतिम रूप से विनिश्चित किया जा चुका है ।"

17. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 में पूर्व-न्याय के नियम को इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है – कोई भी न्यायालय किसी ऐसे वाद या विवाद्यक का विचारण नहीं करेगा जिसमें वह विषय जो प्रत्यक्षत: विवाद्य है, को किसी 'पूर्ववर्ती वाद' में प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: सुना जा चुका है और विनिश्चित किया जा चुका है । अत: पूर्व-न्याय के विवाद्यक पर न्यायनिर्णयन करने के प्रयोजन के लिए यह आवश्यक है कि <u>उसी विवाद्यक</u> (जो वाद में उठाया गया है) का पूर्ववर्ती वाद में न्यायनिर्णयन किया जा चुका है । यह आवश्यक है कि आदेश 7 नियम 11 के अधीन वादपत्र को नामंजूर करने के लिए पूर्व-न्याय को एक आधार के रूप में निर्दिष्ट करने से पूर्व, हम इस न्यायालय द्वारा पूर्व-न्याय का न्यायनिर्णयन करते हुए की गई कवायद को निर्दिष्ट करें । **वी. राजेश्वरी** बनाम **टी. सी. स्वर्णबावा**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति आर. सी. लाहोटी (जैसे कि विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति उस समय थे) ने दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ की ओर से निर्णय देते हुए पूर्व-न्याय के

---

[1] (2004) 1 एस. सी. सी. 551.

अभिवाक् और उन विशिष्टियों पर चर्चा की थी, जो अभिवाक् को साबित करने के लिए अपेक्षित होंगी । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि पूर्व-न्याय के अभिवाक् का न्यायनिर्णयन करते समय अभिवचनों, विवाद्यकों और 'पूर्ववती वाद' में के निर्णय की प्रतियों के प्रति निर्देश करना आवश्यक है :–

> "11. पूर्व-न्याय का नियम पश्चात्वर्ती वाद का विचारण करने वाले न्यायालय की अधिकारिता की जड़ पर प्रहार नहीं करता है । यह लोक नीति पर आधारित निर्णय द्वारा विबंध का यह नियम है कि मुकदमे में अंतिमता होनी चाहिए और एक ही हेतु के लिए किसी व्यक्ति को दो बार तंग नहीं किया जाना चाहिए ।
>
> 13. न केवल अभिवाक् पर विचार किया जाना चाहिए, अपितु इसे पूर्ववर्ती मामले में के अभिवचनों, विवाद्यकों और निर्णय की प्रतियां प्रस्तुत करके प्रमाणित किया जाना चाहिए । हो सकता है, किसी प्रस्तुत मामले में पूर्व-न्याय के अभिवाक् के सबूत के लिए केवल पूर्ववर्ती वाद में के निर्णय की प्रति फाइल की गई हो तथा निर्णय में अभिवचनों के कथन और विवाद्यक का सुविस्तृत या अपेक्षित ब्यौरा अंतर्विष्ट हो, जिसे पर्याप्त सबूत के रूप में लिया जा सकता है । किंतु जैसा कि सैयद मोहम्मद सैली लब्बायी **बनाम** मोहम्मद हनीफा [(1976) 4 एस. सी. सी. 780] वाले मामले में उल्लेख किया गया है, पूर्व-न्याय के प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए जो आधारभूत पद्धति है वह है पहले पक्षकारों द्वारा उनके पूर्ववर्ती वाद में प्रस्तुत किए गए अपने-अपने अभिवचनों में के पक्षकथन का अवधारण किया जाए और इसके पश्चात् यह पता लगाया जाए कि उस निर्णय द्वारा क्या विनिश्चित किया गया था जो पूर्व-न्याय के रूप में लागू होता है । अभिवचनों के बारे में निर्णय में उल्लिखित अभिवचनों में किए गए अभिकथनों के मात्र संक्षिप्त परिवर्णन से अभिवचनों के बारे में अनुमान लगाना जोखिम भरा है । गुरबख्स सिंह **बनाम** भूरालाल, ए. आई. आर. 1964 एस. 1810 = [1964] 7 एस. सी. आर. 831 वाले मामले में संविधान न्यायपीठ ने पूर्व-न्याय के अभिवाक् और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2 नियम 2 के अधीन विबंध के अभिवाक् को समतुल्य

मानते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि पूर्ववर्ती वाद में वादपत्र का सबूत, जो वर्जन सृजित करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है, उसे अभिलेख पर लाना चाहिए । यह अभिवाक् मूलभूत रूप से दोनों वादों में के वाद हेतुक की पहचान पर आधारित होता है और इसलिए प्रतिरक्षा पक्ष, जो वर्जन का प्रश्न उठाता है, पूर्ववर्ती वाद में वाद हेतुक को सिद्ध करे । ऐसे अभिवाकों का अवधारण मात्र अनुमान द्वारा या पूर्ववर्ती अभिवचनों में जिन तथ्यों का उल्लेख किया गया था उनसे काटं-छांट की प्रक्रिया द्वारा निष्कर्ष निकालकर नहीं किया जा सकता है । काली कृष्णा टैगोर **बनाम** सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया इन कौंसिल, [(1887-88) 15 आई. ए. 186 = आई. एल. आर. 16 कलकत्ता 173] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल के माननीय न्यायाधीशों ने यह उल्लेख किया कि पूर्व-न्याय के अभिवाक् का अवधारण इस बात का अभिनिश्चय किए बिना नहीं किया जा सकता है कि पूर्ववर्ती वाद में विवाद्य-विषय क्या थे और क्या सुनवाई की गई थी और विनिश्चित किया गया था । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इनका पता केवल पूर्ववर्ती वाद में के अभिवचनों, विवाद्यकों और निर्णय की जांच-पड़ताल करके लगाया जा सकता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

18. इस प्रक्रम पर, उन विनिश्चयों को निर्दिष्ट करना आवश्यक होगा जो विशिष्ट रूप से इस प्रश्न से संबंधित हैं कि क्या पूर्व-न्याय वादपत्र को नामंजूर करने के लिए आधार या कारण हो सकता है । **कमला और अन्य** बनाम **केटी ईश्वरा सा**[1] वाले मामले में विचारण न्यायाधीश ने विभाजन के लिए एक वाद में वादपत्र को नामंजूर करने के लिए आवेदन को मंजूर किया था और उच्च न्यायालय द्वारा उसकी अभिपुष्टि की गई थी । न्यायमूर्ति एस. बी. सिन्हा ने दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ की ओर से निर्णय देते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11(घ) की व्याप्ति की परीक्षा की और यह मत व्यक्त किया :–

"21. संहिता के आदेश 7 नियम 11(घ) का सीमित उपयोजन

---

[1] (2008) 12 एस. सी. सी. 661.

है । यह अवश्य दर्शित किया जाना चाहिए कि वाद किसी विधि के अधीन वर्जित है । ऐसा कोई निष्कर्ष अवश्य वादपत्र में किए गए प्रकथनों से निकाला जाना चाहिए । हमारी राय में, आदेश 7 नियम 11 में के विभिन्न खंडों को मिश्रित नहीं किया जाना चाहिए । जबकि किसी प्रस्तुत मामले में वादपत्र को नामंजूर करने के लिए इस आदेश के विभिन्न उपखंडों में विनिर्दिष्ट आधारों में के एक से अधिक आधार पर आवेदन फाइल किया जा सकता है, इसलिए इस आशय का अवश्य एक स्पष्ट निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए । संहिता के आदेश 7 नियम 11 के खंड(घ) का अवलंब लेने के लिए जो सुसंगत होगा वह वादपत्र में किए गए प्रकथन हैं । इस प्रयोजन के लिए, कोई घट-बढ़ नहीं की जा सकती है । किसी न्यायालय की अधिकारिता के अभाव का विभिन्न प्रक्रमों पर और संहिता के विभिन्न उपबंधों के अधीन अवलंब लिया जा सकता है । संहिता का आदेश 7 नियम 11 एक बात है और आदेश 14 नियम 2 एक अन्य बात है ।

22. संहिता के आदेश 7 नियम 11(घ) का अवलंब लेने के प्रयोजन के लिए साक्ष्य की किसी मात्रा पर विचार नहीं किया जा सकता है । इस प्रक्रम पर मामले के गुणागुण के आधार पर विवाद्यक, जो पक्षकारों के बीच उद्भूत हो सकते हैं, न्यायालय के क्षेत्र में नहीं आएंगे । सभी विवाद्यक उक्त उपबंध के अधीन आदेश की विषय-वस्तु नहीं होंगे ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया :–

"23. पूर्व-न्याय का सिद्धांत जब लागू होगा, तो संहिता की धारा 12 को दृष्टिगत करते हुए किसी अन्य वाद को वर्जित कर देगा । ऐसा प्रश्न, जिसमें विधि और तथ्य का मिश्रित प्रश्न अंतर्वलित है, जिसके लिए न केवल वादपत्र की परीक्षा करना अपितु अन्य साक्ष्य और पूर्ववर्ती वाद में पारित किए गए आदेश पर या तो आरंभिक विवाद्यक के रूप में या अंतिम सुनवाई के समय पर विचार किया जाना अपेक्षित होगा किंतु इस प्रक्रम पर उक्त प्रश्न

का अवधारण नहीं किया जा सकता है ।

24. यह कहना एक बात है कि वादपत्र में किए गए प्रकथनों से स्पष्टत: कोई वाद हेतुक प्रकट नहीं होता है किंतु यह कहना दूसरी बात है कि यद्यपि इससे एक वाद हेतुक प्रकट होता है और वह विधि द्वारा वर्जित है ।

25. इस बाबत इस न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चयों तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा किए गए विनिश्चयों में एकरूपता नहीं है । किंतु फिर भी जो व्यापक सिद्धांत उनसे निकाला जा सकता है, यह है कि न्यायालय इस प्रक्रम पर किसी साक्ष्य पर विचार नहीं करेगा या तथ्य अथवा विधि के विवादित प्रश्न को नहीं देखेगा । इस स्थिति में, न्यायालय की अधिकारिता अर्थात् उसकी विषय-वस्तु किसी विधि द्वारा वर्जित होना पाई जाती है, तो वादपत्र को नामंजूर करने के लिए आवेदन को ग्रहण किया जाना चाहिए ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

उपरोक्त मत का अनुसरण लगातार इस न्यायालय के विनिश्चयों में सतत् रूप से किया गया है । **चर्च ऑफ क्राइस्ट चेरिटेबल ट्रस्ट एंड ऐजुकेशनल चेरिटेबल सोसाइटी** बनाम **पोन्नियाम्मन ऐजुकेशनल ट्रस्ट**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम (जैसे कि विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति उस समय थे) ने दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ की ओर से निर्णय देते हुए यह मत व्यक्त किया कि :–

"10. ..... । उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि जहां वादपत्र से कोई वाद हेतुक प्रकट नहीं होता है, दावाकृत अनुतोष का मूल्यांकन कम किया गया है और उसे न्यायालय द्वारा अनुज्ञात समय के भीतर ठीक नहीं किया गया है, अपर्याप्त स्टांप-पत्र पर लिखा गया है और न्यायालय द्वारा नियत समय के भीतर सुधार नहीं किया गया है, किसी विधि द्वारा वर्जित है, अपेक्षित प्रतियां संलग्न नहीं की गई हैं और वादी नियम 9 के उपबंधों का अनुपालन करने में असफल

---

[1] (2012) 8 एस. सी. सी. 706.

रहता है, वहां न्यायालय के पास उस वादपत्र को नामंजूर करने के सिवाय कोई अन्य विकल्प नहीं है । उपरोक्त उपबंध के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन शक्ति का प्रयोग वाद के किसी भी प्रक्रम पर या तो वादपत्र के रजिस्ट्रीकरण से पूर्व या प्रतिवादियों को समन जारी होने के पश्चात् या विचारण के समाप्त होने से पूर्व किसी समय पर किया जा सकता है ।

11. इस न्यायालय द्वारा इस स्थिति को सलीम भाई **बनाम** महाराष्ट्र राज्य, [(2003) 1 एस. सी. सी. सी. 557] वाले मामले में स्पष्ट किया गया था, जिसमें संहिता के आदेश 7 नियम 11 पर विचार करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> '9. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि वे सुसंगत तथ्य, जिन पर उसके अधीन आवेदन का विनिश्चय करने के लिए विचार किए जाने की आवश्यकता है, वादपत्र में किए गए प्रकथन हैं । विचारण न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन शक्ति का प्रयोग वाद के किसी भी प्रक्रम पर – वादपत्र के रजिस्ट्रीकरण से पूर्व या प्रतिवादी को समन जारी होने के पश्चात् विचारण के समाप्त होने से पूर्व किसी समय पर किया जा सकता है । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के खंड (क) और (घ) के अधीन आवेदन का विनिश्चय करने के प्रयोजनों के लिए, वादपत्र में किए गए प्रकथन सुसंगत हैं ; प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन में किए गए अभिवाक् इस प्रक्रम पर पूरी तरह से असंगत होंगे, इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन आवेदन का विनिश्चय किए बिना लिखित कथन फाइल करने का निदेश नहीं दिया जा सकता है अपितु विचारण न्यायालय द्वारा अधिकारिता के प्रयोग से संबंधित एक प्रक्रियात्मक अनियमितता है ।'

यह स्पष्ट है कि आदेश 7 नियम 11 पर विचार करने के लिए न्यायालय को वादपत्र में के प्रकथनों की जांच-पड़ताल करनी

चाहिए और विचारण न्यायालय द्वारा इसका प्रयोग वाद के किसी भी प्रक्रम पर किया जा सकता है । यह भी स्पष्ट है कि लिखित कथन में किए गए प्रकथन अतात्विक होते हैं और न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वादपत्र में किए गए प्रकथनों/अभिवाकों की संवीक्षा करे । दूसरे शब्दों में, ऐसे आवेदन का विनिश्चय करने के लिए विचार किए जाने के लिए जिस बात की आवश्यकता है, वह वादपत्र में किए गए प्रकथन हैं । इस प्रक्रम पर, प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन में किए गए अभिवाक् पूरी तरह से असंगत हैं और मामले का विनिश्चय केवल वादपत्र में किए गए प्रकथनों के आधार पर किया जाना चाहिए । इन सिद्धांतों को रेप्टाकोस ब्रेट्ट एंड कंपनी लि. **बनाम** गणेश प्रापर्टी, [(1998) 7 एस. सी. सी. 184] और मेयर (एच. के.) लि. **बनाम** वेस्सल एम. वी. फार्च्यून एक्सप्रेस, [(2006) 3 एस. सी. सी. 100] वाले मामलों में दोहराया गया है ।"

इसी प्रकार, **सौमित्र कुमार सेन** (उपर्युक्त) वाले मामले में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन वादपत्र को इस आधार पर नामंजूर करने का दावा करते हुए एक आवेदन फाइल किया गया था कि वाद पूर्व-न्याय द्वारा वर्जित है । विचारण न्यायाधीश ने आवेदन को खारिज कर दिया और पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के निर्णय की अभिपुष्टि की गई थी । न्यायमूर्ति ए. के. सिकरी ने उच्च न्यायालय के निर्णय की अभिपुष्टि करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

"9. प्रथमत:, यह देखा जा सकता है कि जहां तक स्थायी और आज्ञापक व्यादेश के अनुतोष का संबंध है, वह भिन्न वाद हेतुक पर आधारित है । साथ ही साथ, विचारण न्यायालय द्वारा इस प्रकार के अनुतोष पर केवल तब विचार किया जा सकता है, यदि वादी ऐसे वाद को लाने के लिए अपने वाद लाने के अधिकार को सिद्ध करने में समर्थ होता है । यदि अपीलार्थी द्वारा अपने लिखित कथन में किए गए प्रकथन सही हैं, तो ऐसा वाद कायम रखने योग्य नहीं हो सकता है क्योंकि अपीलार्थी के अनुसार पूर्ववर्ती दो वादों में पहले ही यह विनिश्चित किया जा चुका है कि प्रत्यर्थी सं. 1-वादी भागीदारी फर्म से अपना हिस्सा लेने के पश्चात् बहुत पहले

निवृत्त हो गया था और अपीलार्थी (या अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 2) ही हैं जो मैसर्स सेन इंडस्ट्रीज के कार्यकलापों के प्रबंधन के लिए हकदार हैं । तथापि, इस प्रकम पर, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही उल्लेख किया गया है, लिखित कथन में ली गई प्रतिरक्षा पर विचार नहीं किया जा सकता है । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन आवेदन का विनिश्चय करने के लिए, केवल वादपत्र की जांच-पड़ताल करनी चाहिए । यह संभाव्य है कि चतुराई से प्रारूपित वादपत्र में वादी ने 2008 के वाद सं. 268 के बारे में ब्यौरा नहीं दिया था जो कि उसके विरुद्ध विनिश्चित किया गया था । उसने 1995 के वाद सं. 103 के बारे में उल्लेख करने के लिए पूर्ण रूप से लोप किया था, जिसमें का निर्णय अंतिमता पर पहुंच चुका है । इस शर्त में, वादी-प्रत्यर्थी सं. 1 तथ्यों को दबाने और छिपाने का दोषी हो सकता है यदि अपीलार्थी द्वारा किए गए प्रकथन अंततोगत्वा सत्य पाए जाते हैं । तथापि, विधि के स्थिर सिद्धांतों के अनुसार, लिखित कथन में ली गई ऐसी प्रतिरक्षा की जांच-पड़ताल सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन आवेदन का विनिश्चय करते समय नहीं की जा सकती है ।"

कमला (उपर्युक्त) वाले मामले को निर्दिष्ट करते हुए इस न्यायालय ने आगे यह मत व्यक्त किया कि :–

"12. .....अपीलार्थी ने पूर्ववर्ती दो मामलों के बारे में उल्लेख किया है जो प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा फाइल किए गए थे और जिनमें वह असफल रहा था । ये न्यायिक अभिलेख हैं । अपीलार्थी पूर्ववर्ती दोनों वादों में के अभिवचनों की प्रमाणित प्रतियां तथा न्यायालयों द्वारा उन कार्यवाहियों में पारित किए गए निर्णयों की प्रतियां फाइल करके अपने प्रकथनों की सत्यता को आसानी से प्रदर्शित कर सकता है । वास्तव में, अपीलार्थी द्वारा सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ प्रभाग) द्वारा तारीख 31 मार्च, 1997 को पारित निर्णय और डिक्री में पारित आदेशों की प्रतियां, सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ प्रभाग) द्वारा सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ प्रभाग) द्वारा पारित डिक्री को कायम रखते हुए तारीख 31 मार्च, 1998 को पारित

निर्णय की प्रति तथा 2008 के वाद सं. 268 में सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ प्रभाग) द्वारा तारीख 31 जुलाई, 2014 को पारित निर्णय और डिक्री की प्रति अभिलेख पर प्रस्तुत की गई हैं । विचारण न्यायालय ने प्रथम वाद का विनिश्चय करते समय यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाला था कि पक्षकारों के बीच हस्ताक्षरित एमओयू के अनुसार प्रत्यर्थी सं. 1 ने 2,00,000/- रुपए की राशि स्वीकार की थी और इसलिए उक्त वाद विबंध, अभित्यजन और उपमति के सिद्धांतों द्वारा वर्जित था । इस प्रकार के मामले में, यद्यपि अपीलार्थी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 का अवलंब लेना समुचित नहीं था, साथ ही साथ, विचारण न्यायालय विवाद्यकों को विरचित करने के पश्चात् उन विवाद्यकों पर विचार कर सकता है जो वाद की संधार्यता से संबंधित हैं और उनका विनिश्चय पहले कर सकता है । इस रीति में अपीलार्थी और इस विषय के लिए पक्षकारों को लंबी चलने वाली कार्यवाहियों की अनावश्यक पीड़ा से छुटकारा दिलाया जा सकता है, यदि अपीलार्थी द्वारा किए गए निवेदन अंततोगत्वा सही पाए जाते हैं ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

यह अभिनिर्धारित करते हुए कि अपीलार्थी द्वारा आदेश 7 नियम 11 का अवलंब लेना समुचित नहीं था, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि विचारण न्यायालय, विवाद्यकों को विरचित करने के पश्चात्, उन विवाद्यकों पर विचार कर सकता है जो वाद की संधार्यता से संबंधित हैं और पहली बार में उनका विनिश्चय किया जाए । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि इस कार्रवाई से अपीलार्थी को लंबी कार्यवाहियों से बचने में सहायता मिलेगी ।

19. **शक्ति भोग फूड इंडस्ट्रीज लि.** बनाम **सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के बिल्कुल हाल ही के विनिश्चय में इस न्यायालय की एक तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने विचारण न्यायालय द्वारा आदेश 7 नियम 11 के अधीन एक वादपत्र को इस आधार पर नामंजूर करने की बात पर विचार किया था कि यह

---

[1] (2020) एस. सी. सी. ऑन लाइन एस. सी. 482.

परिसीमा द्वारा वर्जित है । इस न्यायालय ने **सलीम भाई** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1], **चर्च ऑफ क्राइस्ट चेरिटेबल ट्रस्ट** (उपर्युक्त) वाले मामलों सहित पूर्ववर्ती विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया और यह मत व्यक्त किया कि :–

> "18. यह स्पष्ट है कि आदेश 7 नियम 11 पर विचार करने के लिए न्यायालय को वादपत्र में किए गए प्रकथनों की जांच-पड़ताल करनी चाहिए और विचारण न्यायालय द्वारा इसका प्रयोग वाद के किसी भी प्रक्रम पर किया जा सकता है । यह भी स्पष्ट है कि लिखित कथन में किए गए प्रकथन अतात्विक हैं और न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह वादपत्र में किए गए प्रकथनों/अभिवाकों की संवीक्षा करे । दूसरे शब्दों में, ऐसे आवेदन का विनिश्चय करने के लिए जिस बात की जांच-पड़ताल किए जाने की आवश्यकता है, वह वादपत्र में किए गए प्रकथन हैं । उस प्रक्रम पर, प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन में किए गए अभिवाक् पूर्णत: असंगत हैं और मामले का विनिश्चय केवल वादपत्र में किए गए प्रकथन के आधार पर किया जाना चाहिए । इन सिद्धांतों को रेप्टाकोस ब्रेट्ट एंड कंपनी लि. **बनाम** गणेश प्रापर्टी [(1998) 7 एस. सी. सी. 184] और मेयर (एच. के.) लि. **बनाम** वेस्सल एम. वी. फॉर्च्यून एक्सप्रेस [(2006) 3 एस. सी. सी. 100] वाले मामलों में दोहराया गया है ।"

20. उपरोक्त नज़ीरों का परिशीलन करने पर, आदेश 7 नियम 11(घ) के अधीन आवेदन का विनिश्चय करने के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों का सारांश निम्नलिखित रूप में दिया जा सकता है :–

> (i) किसी वादपत्र को इस आधार पर नामंजूर करने के लिए कि वाद किसी विधि द्वारा वर्जित है, केवल वादपत्र में किए गए प्रकथनों के प्रतिनिर्देश करना होगा ;
>
> (ii) आवेदन के गुणागुण का विनिश्चय करते हुए, प्रतिवादी द्वारा वादपत्र में ली गई प्रतिरक्षा पर कतई विचार नहीं किया जाना चाहिए ;

---

[1] (2003) 1 एस. सी. सी. 557.

(iii) यह अवधारण करने के लिए कि क्या कोई वाद पूर्व-न्याय द्वारा वर्जित है या नहीं, यह आवश्यक है कि (i) 'पूर्ववर्ती वाद' का विनिश्चय किया गया है ; (ii) पश्चात्वर्ती वाद में के विवाद्यक प्रत्यक्षत: और सारत: पूर्ववर्ती वाद में भी विवाद्य थे ; (iii) पूर्ववर्ती वाद उन्हीं पक्षकारों या उन पक्षकारों के बीच था जिनके माध्यम से वे उसी हक के अधीन दावा, मुकदमेबाजी कर रहे हैं ; और (iv) इन विवाद्यकों का पश्चात्वर्ती वाद का विचारण करने के लिए सक्षम न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णयन और अंतिम रूप से विनिश्चय किया गया था ; और

(vi) चूंकि पूर्व-न्याय के अभिवाक् का न्यायनिर्णयन करने के लिए 'पूर्ववती वाद' में के अभिवचनों, विवाद्यकों और विनिश्चय पर विचार करना अपेक्षित है, इसलिए ऐसा कोई अभिवाक् आदेश 7 नियम 11(घ) की परिधि से परे होगा और वहां केवल वादपत्र में के कथनों का परिशीलन करना होगा ।

21. प्रस्तुत मामले में, वादपत्र का अर्थपूर्ण अनुशीलन करने पर पूरी तरह से यह स्पष्ट होता है कि जब प्रथम प्रत्यर्थी ने पश्चात्वर्ती वाद संस्थित किया था, तब उसे पूर्ववर्ती वाद (2007 का मूल वाद सं. 103) जो कि तारीख 13 मार्च, 2007 को संस्थित किया गया था, में द्वितीय प्रतिवादी के रूप में अभियोजित किया गया था । प्रथम प्रत्यर्थी ने पश्चात्वर्ती वाद (2008 का मूल वाद सं. 138) संस्थित किया था, यद्यपि उसे पूर्ववर्ती वाद की जानकारी थी । पश्चात्वर्ती वाद, जो प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा संस्थित किया गया था, में के वादपत्र से यह उपदर्शित होता है कि उसे कर्नाटक राज्य वित्त निगम के पक्ष में निष्पादित बंधक की जानकारी थी और यह कि कर्नाटक राज्य वित्त निगम ने अपने बकाया की वसूली के लिए संपत्ति का विक्रय करके अपने भार का निष्पादन किया था तथा संपत्ति तारीख 8 अगस्त, 2006 को अपीलार्थी के पूर्वाधिकारी के पक्ष में विक्रय की गई थी । वस्तुत:, वादपत्र में यह अभिकथन अंतर्विष्ट है कि इस बात की पूरी संभाव्यता है कि प्रथम प्रत्यर्थी को 2007 के मूल वाद सं. 103 में कब्जे के लिए डिक्री सहन करनी पड़ सकती है और इस बात ने प्रथम प्रत्यर्थी को विक्रय विलेख

की वैद्यता को चुनौती देने के लिए वाद संस्थित करने हेतु "बाध्य किया है" । इस तथ्य को देखते हुए कि पूर्ववर्ती वाद में नीलामी को चुनौती नहीं दिए जाने और कर्नाटक राज्य वित्त निगम द्वारा बाद में निष्पादित विक्रय विलेख के संबंध में एक तर्क दिया गया था, इसलिए यह संभाव्य है कि प्रथम प्रत्यर्थी ने इसके पश्चात् अपने अधिकारों का प्रयोग करने का विनिश्चय किया और पश्चात्वर्ती वाद फाइल किया । जो भी स्थिति हो, वादपत्र के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि प्रथम प्रत्यर्थी ने इस तथ्य को छिपाने का प्रयत्न नहीं किया था कि उस समय पर संपत्ति से संबंधित एक वाद सिविल न्यायालय के समक्ष लंबित था । यह भी उल्लेख करना सुसंगत है कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा वाद (2008 का मूल वाद सं. 138) संस्थित करने के समय पर सिविल न्यायालय द्वारा 2007 के मूल वाद सं. 103 में कोई डिक्री पारित नहीं की गई थी । इस प्रकार, उस समय पर 2007 के मूल वाद सं. 103 में उठाए गए विवाद्यकों का न्यायनिर्णयन नहीं किया गया था । इसलिए वादपत्र से, प्रत्यक्षत:, ऐसा कोई तथ्य प्रकट नहीं होता है जिसके आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकें कि वादपत्र इस आधार पर नामंजूर किए जाने योग्य है कि यह पूर्व-न्याय के सिद्धांतों द्वारा वर्जित है । उच्च न्यायालय और विचारण न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करते हुए सही दृष्टिकोण था कि अपीलार्थी द्वारा दिए गए तर्कों के आधार पर विनिश्चय करने के लिए न्यायालय को वादपत्र में किए गए प्रकथनों से परे जाना होगा और 2007 के मूल वाद सं. 103 में के अभिवचनों, निर्णय और डिक्री का परिशीलन करना होगा । आदेश 7 नियम 11 के अधीन आवेदन का विनिश्चय अवश्य वादपत्र के दायरे में रहकर किया जाना चाहिए । विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने आदेश 7 नियम 11(घ) के अधीन आवेदन को नामंजूर करके ठीक किया था ।

22. उपरोक्त कारणों से, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि वादपत्र आदेश 7 नियम 11(घ) के अधीन नामंजूर किए जाने योग्य नहीं है और विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के निष्कर्षों की अभिपुष्टि की जाती है । तथापि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमने इस बारे में कोई राय अभिव्यक्त नहीं की है कि क्या पश्चात्वर्ती वाद पूर्व-न्याय के

सिद्धांतों द्वारा वर्जित है या नहीं । हम अपीलार्थी को, जिसने कर्नाटक राज्य वित्त निगम द्वारा की गई नीलामी में वाद संपत्ति के सद्भावी क्रेता का समनुदेशिती होने का दावा किया है, 2008 के मूल वाद सं. 138 में अपर सिविल न्यायाधीश, बेलगांव के समक्ष वाद की संधार्यता के मुद्दे को उठाने की स्वतंत्रता देते हैं । अपर सिविल न्यायधीश, बेलगांव इस बात पर विचार करेंगे कि क्या आदेश 14 के अधीन कोई आरंभिक विवाद्यक विरचित किया जाना चाहिए या नहीं और यदि ऐसा किया जाता है, तो आरंभिक विवाद्यक उठाने के तीन माह की अवधि के भीतर इसका विनिश्चय किया जाए । किसी भी स्थिति में, वाद का अंतिम रूप से न्यायनिर्णयन तारीख 31 मार्च, 2022 तक किया जाएगा ।

23. उपरोक्त कारणों से, हम इस अपील को खारिज करते हैं और उच्च न्यायालय के तारीख 18 जनवरी, 2021 के आक्षेपित निर्णय और आदेश की अभिपुष्टि करते हैं । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन आवेदन खारिज हो जाएगा । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

24. लंबित आवेदन (आवेदनों) का, यदि कोई है, निपटारा हो जाएगा ।

अपील खारिज की गई ।

जस.